ISSN: 2349-7637 (Online)
RESEARCH HUB International Multidisciplinary Research Journal
https://rhimrj.co.in/ [Peer-Reviewed Journal]

आदिवासी साहित्य, संस्कृति एवं उपन्यास : सामान्य अवलोकन

[1]डॉ. करतार सिंह; [2]कान्ति देवी मीना

[1]सह आचार्य, हिंदी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
[2]शोधार्थी हिन्दी विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 05 December 2020

Keywords
आदिवासी, साहित्य, उपन्यास, संस्कृति, कथा साहित्य।

ABSTRACT

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतः समाज में रहकर जीता है। उसी समाज का अपना साहित्य और अपनी संस्कृति होती है। मानवों की परम्परागत भावों और विचारों के संचित भंडार का नाम साहित्य है। साहित्य में किसी जाति, समाज एवं राष्ट्र के सभी भाव एवं विचार विद्यमान रहते है। साहित्य को सदैव परम्परा से प्रेरणा मिलती है। वह परम्परा से ही विचारों को ग्रहण करता है। परम्परा का संबंध संस्कृति से है। अतः संस्कृति ही किसी देश या राष्ट्र की परम्परा का निर्माण करती है और वह इस देश या राष्ट्र के साहित्य को प्रेरणा प्रदान करती है। इस दृष्टि से संस्कृति एक ऐसी सुदृढ़ नींव है, जिस पर साहित्य का विशाल भवन तैयार होता है। संस्कृति के मूल पर साहित्य का वृक्ष विकसित होकर पुष्पित एवं फलित होता है। साहित्य और संस्कृति एक सिक्के दो पहलु है। साहित्य के बिना संस्कृति पंगु है तो संस्कृति के बिना साहित्य अधुरी है। दोनों एक दूसरे के साथ जुड़कर समाज ही का कार्य कर सकते है। अकेला साहित्य कुछ नहीं कर सकता, तो अकेली संस्कृति अपना अस्तित्व नहीं टीका सकती। भारतीय साहित्य के द्वारा हम जान सकते है कि हमारी संस्कृति कितनी त्याग एवं भोग प्रधान है।

शोध विस्तार– आदिवासी संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है। इसके अन्तर्गत जाति समानता, लिंग समानता, सहभागिता, सामूहिकता, भाईचारा एवं सबसे विशिष्ट प्रकृत से निकटस्थ संबंध एवं प्रकृति प्रेम है, जो अन्य सभी संस्कृतियों से आदिवासी संस्कृति को पृथक करती है। आदिवासी संस्कृति में मनुष्य का जीवन बिल्कुल सादा है। इनका दृष्टिकोण उपयोगवादी है और विचारधारा 'जीयो और जीने दो' की है। उपयोगिता के साथ–साथ इनकी कार्य योजना सामूहिक सहयोगता एवं अनुशासन पर टिकी हुई है। आदिवासी चेतना के अन्तर्भाव में प्रकृति के नियम के अन्तर्गत संग्रह की अपेक्षा त्याग, प्रतिशोध की अपेक्षा दया, क्षमा आदि का महत्वपूर्ण स्थान है।[1]

आदिवासियों में गोत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। गोत्र एक बहिर्विवाही समूह होता है। गोत्र की उत्पत्ति एक पूर्वज से मानी जाती है, जो कि कल्पित अथवा वास्तविक हो सकता है तथा यह आवश्यक नहीं है कि पूर्वज मनुष्य ही हो। वह एक पशु, पक्षी, पेड़–पौधा तथा अन्य भौतिक पदार्थ भी हो सकता है। एक पूर्वज की संतान होने के कारण एक गोत्र के सदस्य आपस में भाई–भाई या भाई–बहन का संबंध मानते है, अतः उनमें परस्पर विवाह निषेध होता है। नाना प्रकार की विवाह प्रथाएँ आदिवासी समुदाय में पायी जाती है।

आदिवासी स्त्रियाँ शेष हिन्दू समाज की स्त्रियों से विभिन्न हैं, जहां स्त्रियों को आजीवन साथ रहना अनिवार्य है। इसके विपरीत आदिवासी महिला अधिक स्वतंत्र, स्वावलंबी, परिवार की धुरी व संस्कारों की इकाई है। बहुओं को दहेज के लिए मौत के घाट उतार देना या सास–बहु में निरन्तर तनाव बने रहने जैसी समस्याऐं, आदिवासी समुदाय में नहीं देखी जाती है जो सामान्य तौर पर सवर्ण उच्च जातियों में देखी जाती है। आदिवासी स्त्रियों में समान्यतया वैधव्य कम भुगतान होता है। पति के मरने के बाद जैसे ही शोक का समय गुजरता हैं, पत्नी दूसरा विवाह कर सकती है। आदिवासी समाज में वहीं स्त्री विधवा रहती है। जिसकी उम्र अधिक है और जिसे दूसरी बार अैर कोई विवाह करने को तैयार न हो। हिन्दू जातियों में विधवा की जो दयनीय दशा है, आदिवासी विधवा की ऐसी दशा नहीं होती।[2]

'मानवीय रिश्तों' की गहराई इनके प्रतिदिन के आचार–विचार एवं अभित्व सत्कार में परिलक्षित होती है। अतिथि देवो भवः की कल्पना को सत्कार स्वरूप देने में आदिवासी किसी से पिछड़े नहीं है और यह जग जाहिर है कि गरीब से गरीब परिवार अपने को भुखा रख लेगा, पर घर आये मेहमान को भूखा नहीं रखेगा। आदिवासी समाज में सुरक्षा, सावधानी, सम्पर्क का जिम्मा पूरे गांव का है चाहे एक परिवार की मवेशी चोरी हो या अन्य परिवार की दुःखद घटना। इन्हीं प्रसंगों में मानवीय रिश्तों का स्वरूप स्पष्ट रूप से झलकता है।

आदिवासी समुदाय में सभी आदिवासियों के पहनावे में परस्पर भिन्नता पायी जाती है। आदिवासियों में आभूषणों और गोदने गोदवाने के प्रति विशेष लगाव देखने को मिलता है। आदिवासी सोने के गहने नहीं पहनते, उनके गहने प्रायः चांदी, गिलट अथवा अन्य मिश्र धातुओं के बने होते है। वे लकड़ी, मोती, मूंगे, सींगों, हाथी दांत, घोंघे, कोड़ी आदि से बने गहने भी बड़े शोख से पहनते है। गोदना गोदवाना एक ऐसी लोक परम्परा है। जो प्राचीनकाल से चली आ रही है। आदिवासियों

में स्त्री पुरूष दोनों आने शरीर को गोदनों से सजाना अध्याधिक पसंद करते है। स्त्रियों के शरीर पर गोदने अधिक बनाए जाते है।[3]

जीवन निर्वाह के लिए स्थायी एवं स्थानान्तरित कृषि करते है। इनकी कृषि व्यवस्था में भी विविधता पायी जाती। यथा दाही कृषि, बेवड़ा कृषि, गुहड कृषि, डिप्पा कृषि, पेंडा कृषि इत्यादि। कृषि के साथ–साथ, वनोपज पर अधिक निर्भर होते है। ये आदिवासी पशु पक्षी भी पालते है साथ ही सरल कारीगरी का भी कार्य करते है। आदिवासी शिकार के बहुत शोकीन होते है।[4]

सामाजिक शिक्षा प्रायः वे अपने गांव, समाज, परिवार के बीच रहकर अपने बड़ों से ग्रहण करते है। साथ ही कथा कहने, पहेलियों को सुलझाने, पर्वों में उपस्थित होने तथा धार्मिक संस्कारों में भाग लेने से जीवन संबंधी शिक्षा प्राप्त करते है। कुछ आदिवासी समुदाय में युवागृह जैसी संस्था भी पायी जाती है। जिसमें युवक युवतियाँ अपना जीवन व्यतित करते है। यह संस्था मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार और नागालेण्ड के आदिवासियों में पाई जाती है। वास्तव में ये युवागृह शिक्षा संस्थाओं का काम भी करते है। इनमें सामूहिक गान, नृत्य तथा कहानियों के माध्यम से न केवल भावी जीवन की तैयारी की जाती है वरन् आदिवासी संस्कृति का भी नई पीढ़ी का हस्तान्तरण होता है।

विभिन्न कला की दृष्टि से आदिवासियों को निम्नकोटि का समझना भ्रमात्मक होगा। यद्यपि वे विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की अवस्थाओं से नहीं गुजरे है, परन्तु इसका तात्पर्य कदापि यह नहीं है कि उनकी कला में विशिष्टता न रही हो। आदिवासियों में शिल्प कला, चित्रकला, संगीत एवं साहित्य आदि कलाओं का पाया जाना इस बात को प्रमाणित करता है कि आदिवासी भी कलाप्रिय होते है और उनकी उन्नति के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते है।[5]

आदिवासी संस्कृति गीतों और नृत्यों की संस्कृति है। कोई भी संस्कार, अनुष्ठान, पर्व–त्योहार, मेला आदि गीत–नृत्य के बिना सम्पन्न नहीं होता। इनके नृत्य भी देखने योग्य होते है। प्रमुख रूप से तीन प्रकार के नृत्य किये जाते है–वीरता के नृत्य, धार्मिक नृत्य एवं सामाजिक नृत्य। प्रस्तुति की दृष्टि से इन नृत्यों के अन्य विभिन्न प्रकार हो सकते है। नाचते गाने के समय विभिन्न वाद्य भी बजाये जात है, इनमें प्रमुख है–मांदल, नगाड़ा, ढोल, टिमकी, सिंगबाजा, अलगोवा, चिटकोरा, चिकारा, चुटकी और किंदरी इत्यादि। इनके गीतों में लोरियाँ, अर्थहीन तुकांत, कविताएँ, भक्तिपूर्ण गीत, प्रेमगीत, व्यंग्यात्मक पद्य, महाकाव्यात्मक लोकगान प्रचलित है। इनमें सामाजिक गीत, वैवाहिक गीत, नृत्यगीत, शिकार गीत, जादू मंत्र एवं शव यात्रा संबंधी राग पाये जाते है।[6]

उपन्यास आधुनिक साहित्य की सबसे अधिक सबल एवं प्रौढ़ विधा के रूप में आज अपना स्थान ग्रहण कर चुका है। आज के युग जीवन की संस्कृति को वास्तविक संरक्षण भी वहीं दे सकता है। हमने साहित्य और संस्कृति के संबंध की व्याख्या करते हुए यह स्वीकार किया है कि साहित्य संस्कृति की न केवल संरचना एंव सर्जना करता है बल्कि वह संस्कृति का सुयोग्य संरक्षण भी होता है। साहित्य के व्यापक परिवेश में ही संस्कृति सुरक्षित रहती है। साहित्य ही एकमात्र कला का ऐसा क्षेत्र है, जहां संस्कृति की अधिकाधिक रक्षा संभव है। वैसे, प्रत्येक कलाकृतियों में चाहे स्थापत्य कला हो, मूर्तिकला, चित्रकला हो या नृत्य संगीत कला प्रायः सभी किसी न किसी रूप में अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने का भरपुर प्रयत्न करते है, फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि संस्कृति के संरक्षण में अन्य कला रूपों की तुलना में साहित्य कला अथवा काव्य कला सर्वाधिक महत्वपूर्ण कला है।[7]

आज साहित्य तथा काव्य का पर्याय उपन्यास साहित्य बन गया है। जैसे कभी काव्य की विधा साहित्य का पर्याय थी, ठीक वैसे ही आज उपन्यास भी साहित्य का पर्याय बन गया है। इस दृष्टि से यदि आज के युग को गद्य का युग कहा जाता है तो वह ठीक ही है। क्योंकि आज गद्य के माध्यम से ही हम अपने को तथा समाज को यानी कि अपने युग को अभिव्यक्त कर सकते है, अतः अभिव्यक्ति के इस स्तर पर उपन्यास साहित्य का अपने युग जीवन की संस्कृति से अनिवार्यतः संबंध जुड़ जाता है। उपन्यासकार के लिए यह महान चुनौती का विषय है कि वह अपने युग सांस्कृतिक तत्वों को अपने उपन्यासों में प्रकट कर सकता है अथवा नहीं। अतः उपन्यास साहित्य का संस्कृति से घनिष्ठतम संबंध होता है। मतलब यह कि कोई भी उपन्यास उसी मात्रा में महत्वपूर्ण तथा गौरव का अधिकारी हो सकता है, जिस मात्रा में उसने अपने समकालीन जीवन तथा संस्कृति से अपना साक्षात्कार किया हो। रचनाकार जहां अपने युग की संस्कृति को प्रभावित करता है, वहीं वह उससे अपने सृजन में प्रेरणाएँ भी ग्रहण करता है। दोनों का यह अन्तसंबंध आदान–प्रदान का है। कलाकार अपने युग को कुछ देता है तो उससे कुछ लेता भी है। यह लेन–देन विशुद्धतः सांस्कृतिक तथा वैचारिक धरातल पर होता है। उपन्यासों का आदिवासी साहित्य में विशेष योगदान है जिसे भुलाया नहीं जा सकता।[8]

निष्कर्ष रूप में उपन्यास आज की सभ्यता तथा संस्कृति की महत्वपूर्ण साहित्यिक उपलब्धि है। बाह्य जीवन की आवश्यकताओं को समग्र रूप में चित्रित करने वाला यह एक ऐसा साहित्य रूप है, जो अपने पूर्व की कई साहित्यिक परम्पराओं को आत्मसात करते हुए भी अभिनव आकर्षण के साथ प्रकट हुआ है। आज इस साहित्यिक विधा ने अपना पर्याप्त विकास कर लिया है जिससे कि उसमें जीवन के विस्तृत यथार्थ को व्यक्त कर सकने की क्षमता आ गई है। उसने हमारे युगीन संस्कारों तथा संस्कृतियों को व्यक्त करने में अभूतपूर्व सफलता पायी है। अतः हम बिना किसी हिचक के यह यह सकते है कि आज का उपन्यास साहित्य संस्कृति से गहरे स्तर पर अपना संबंध बनाए हुए है तथा उसमें अपने

समय के सांस्कृतिक तत्वों को अभिव्यक्त करने का गंभीर प्रयत्न लक्षित किया जा सकता है। 21वीं सदी के आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों ने आदिवासियों के जीवन व संस्कृति को बड़े ही खूबसरत ढंग से प्रस्तुत किया है।[9]

निष्कर्षः— संस्कृति मनुष्य के जीवन में घटित होने वाले प्रत्येक पहलू को स्पर्श करती है, जिसके आधार पर मनुष्य का दैनिक जीवन चलता है। अतः संस्कृति मानव जीवन का आवश्यक पहलू है। संस्कृति और सभ्यता अलग—अलग न होकर एक ही सिक्के की दो बाजूएँ है। उनका संबंध अन्योन्याश्रय है, जिसमें से सिकी भी एक अभाव में दूसरा महत्वहीन तथा निरर्थक बन सकता है। वस्तुतः दोनों ही मानव विकास के दो पहलू है। एक विशेष पर्यावरण में रहने वाला, एससी बोली बोलने वाला, समान जीवन शैली से सजा, एक से देवी—देवताओं को माननेवाला, समान सांस्कृतिक जीवन यापन करने वाला परन्तु अक्षर ज्ञान रहित मानव समूह यानी आदिवासी और ऐसे समुदाय की संस्कृति ही आदिवासी संस्कृति है। आदिवासी संस्कृति भारतीय संस्कृति में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। जिसे आदिवासी केन्द्रीत उपन्यासों ने बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। आदिवासी संस्कृति का सार है। आज जंगल छूट जाने के कारण आदिवासियों को जीवन के मानवीय मूल्यों की संस्कृति छोडकर मात्र जिन्दा रहने के लिए जातीय ऊँच—नीच और शोषण करने वाली संस्कृति में प्रवेश कर अपना जीवन जीना पड़ रहा है। संस्कृति का साहित्य से घनिष्ट संबंध है और उपन्यास साहित्य का संस्कृति से। उपन्यास आधुनिककाल की सर्वाधिक शक्तिशाली एवं लोकप्रिय विधा है, जो निरन्तर विकासशील है। समय की प्रवृत्ति के अनुसार उपन्यास का स्वरूप बदलता रहा है। बदलते उपन्यास स्वरूप एवं विकास के अंतर्गत आदिवासी जीवन केन्द्रीत उपन्यास भी अपनी निजी एवं महत्वपूर्ण पहचान रखता है।

संदर्भ सूची—

1. सुधीर राजाराम देवरे, समाजशास्त्र अवधारणा एवं विकासः पृ. 101
2. रामसजन पाण्डेय, भक्तिकालीन हिन्दी निर्गुण काव्य का सांस्कृतिक अनुशीलन, पृ. 15
3. राधेश्याम शर्मा : साहित्य एवं सांस्कृतिक चिंतन, पृ. 96
4. विमल शाह : गुजरात के आदिवासी पृ. 1
5. हरिश्चंद्र उप्रेती, भारतीय जनजातियॉ : पृ. 10
6. शंभूलाल दोषी, भारतीय समाजः सरंचना और परिवर्तन : पृ. 154
7. मंजु गुप्ता : जनजातियों का सामाजिक आर्थिक उत्थान, पृ. 1
8. वहीं, पृ. 561
9. समाजशास्त्र विश्वकोष : हरिकृष्ण रावत, पृ. 1